माननीय *एम.एम. कुमार और टी.पी.एस. मान,* न्यायाधीश जी के समक्ष

एसडीओ विद्युत ओपी सब डिवीजन नं 9,
यू.टी., सेक्टर 43, चंडीगढ़, — याचिकाकर्ता

बनाम

भारत और संघ एवं अन्य, — *प्रतिवादी*

सी.डब्ल्यू.पी. 2007 की संख्या 5977

4 फरवरी, 2008

*भारत का संविधान, 1950 — कला. 226 — **विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - 22 सी(1) एवं 22 सी(8)** — बिजली चोरी का मामला —एक विस्तृत तर्क पारित करके लोक अदलात के स्पष्ट निष्कर्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ आदेश — **उपभोक्ता का बिजली मीटर किसी भी समय धीमी गति से चलता हुआ नहीं पाया गया या इसकी सीलों के साथ छेड़छाड़ की गई थी** - बिजली की खपत **सीमा के भीतर सामान्य** भिन्नता कोई **तेज वृद्धि या गिरावट** नहीं थी — **उच्च न्यायालय तथ्य के निष्कर्षों पर नहीं जा सकता— सबूतों की फिर से सराहना करने और स्थायी लोक द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष दर्ज करने की पूरी तरह से अस्वीकार्य है — धारा 22 सी (8) के प्रावधान स्थायी लोक अदालत को किसी मामले को योग्यता के आधार पर तय करने का अधिकार देते हैं, भले ही पक्षकार किसी समझौते/करार पर नहीं पहुंचते हों— क्या यह अधिकार क्षेत्र से बाहर है और हटाई जाने के लिए उत्तरदाई है — आयोजित नहीं — याचिकाकर्ता के पास केंद्रीय कानून के प्रावधान को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है — याचिका खारिज.***

अभिनिर्धारित किया गया कि विवादित आदेश में हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। लोक अदालत ने याचिकाकर्ता के खिलाफ स्पष्ट निष्कर्ष देते हुए एक विस्तृत तर्कसंगत आदेश पारित किया है। आक्षेपित आदेश

के अवलोकन से पता चलता है कि किसी भी समय प्रश्नगत मीटर को धीमी गति से चलते हुए या सील के साथ छेड़छाड़ करते हुए नहीं पाया गया। याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 3 के दावे का खंडन करने में विफल रहा कि प्रवर्तन कर्मचारियों के एक कनिष्ठ अभियंता की शरारत के कारण मीटर चलना बंद हो गया, जिसने लकड़ी के टुकड़े की मदद से मीटर को जोरदार झटका दिया। लोक अदालत ने यह भी विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया की दावेदार- प्रतिवादी नंबर 3 के संस्करण को बाद में विचारा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने जाँच रिपोर्ट पर अपने हाथ से एक नोट जोड़ा है। संबंधित मीटर की जाँच एम एंड टी लैब में भी की गई थी लोक अदलत को बुलाया गया।

एम एंड टी लैब की रिपोर्ट के लिए लेकिन इसे याचिकाकर्ता द्वारा इसके समक्ष कभी प्रस्तुत नहीं किया गया। लोक अदालत ने जांच से पहले की एक वर्ष की अवधि और उसके बाद की अवधि के लिए प्रतिवादी नंबर 3 का उपभोग डाटा भी मांगा। इसमें पाया गया है कि बिजली की खपत में सीमा के भीतर सामान्य भिन्नता है और चोरी के मामले को बरकरार रखने के लिए कोई तेज वृद्धि या गिरावट नहीं हुई है। यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में तथ्य के निष्कर्षों पर नहीं जा सकता है। हम सबूतों की दोबारा सहराना नहीं कर सकते हैं और स्थायी लोक अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष को दर्ज नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह पूरी तरह से अस्वीकार्य है ।

(पैरा 3)

आगे आयोजित किया गया कि, हमें अधिनियम की धारा 22सी(8) को रद्द करने और अधिकारेतर घोषित करने की दूसरी प्रार्थना में कोई बल नहीं दिखता क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही संशोधन अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के पास केंद्रीय कानून के प्रावधान को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता यानी यू.टी. चंडीगढ़ प्रशासन को किसी भी तरह से संशोधन अधिनियम के आधार पर पीड़ित पक्ष के रूप में नहीं माना जा सकता है, जिसके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ अधिनियम की धारा 22सी(8) जोड़ी गई थी। बेशक, भारत में राज्य या केंद्र शासित प्रदेश को अदालतों में यह आग्रह करने का अधिकार देना खतरनाक पाठ्यक्रम

होगा कि उनके अपने कानून और अधिनियम असंवैधानिक और अमान्य हैं।

(पैरा 4और *5)*

याचिकाकर्ता की ओर से वकील पुनिता सेठी।

मनमोहन सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, एम.पी. गुप्ता, एडवोकेट, *प्रतिवादी संख्या 3 के लिए.*

***म. म. कुमार*, न्यायाधीश जी**

(1) संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर तत्काल याचिका स्थायी लोक अदालत (सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं के लिए), यू.टी. चंडीगढ़, द्वारा पारित आदेश दिनांक 6 जुलाई, 2006 (पी-1) के खिलाफ निर्देशित है जिसके तहत कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षिप्तता के लिए, 'अधिनियम') की धारा 22 सी (1) के तहत श्री राज पाल सिंगला-प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा दायर आवेदन को 1,100 रुपये की लागत के साथ अनुमति दी गई है। आवेदक (प्रतिवादी संख्या 3) को टालने योग्य उत्पीड़न और अनुभव में डालना। याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 22सी(8) के प्रावधानों को रद्द करने और उन्हें अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित करने की भी प्रार्थना की है, जो स्थायी लोक अदालत को किसी मामले को योग्यता के आधार पर तय करने का अधिकार देता है, भले ही दोनों पक्ष किसी समझौते/समझौते पर न पहुंचें।

(2) मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि श्री राज पाल सिंगला-प्रतिवादी नंबर 3 ने याचिकाकर्ता से अपने मकान नंबर 403, सेक्टर 44 ए, चंडीगढ़ के लिए बिजली कनेक्शन प्राप्त किया। 2 सितंबर, 2005 को, बिजली विभाग, यू.टी. चंडीगढ़ के प्रवर्तन स्टाफ ने प्रतिवादी नंबर 3 के परिसर का निरीक्षण किया और बिजली मीटर की सटीकता की जांच की। यह अनुमेय सीमा के भीतर पाया गया और भार भी स्वीकृत सीमा के भीतर उपभोग किया जा रहा था। निरीक्षण के दौरान प्रवर्तन स्टाफ के एक कनिष्ठ अभियंता ने मीटर को लकड़ी के टुकड़े की मदद से जोरदार झटका दिया और मीटर चलना बंद हो गया। इसके बाद मीटर को नए इलेक्ट्रॉनिक मीटर से बदल दिया गया। 6 फरवरी, 2006 को, प्रतिवादी नंबर 3 को एक कारण बताओ नोटिस मिला, जिसमें उनसे 13,046 रुपये जमा करने को

कहा गया, दो दिनों के भीतर, ऐसा न करने पर बिजली कनेक्शन काट दिया जाना था (पी-2)। व्यथित महसूस करते हुए, प्रतिवादी नंबर 3 ने सेवा में कमी के लिए 14 फरवरी, 2006 को स्थायी लोक अदालत (सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएं) यू.टी., चंडीगढ़, के समक्ष शिकायत दर्ज की। (पी-3). याचिकाकर्ता लोक अदालत के समक्ष पेश हुआ और शिकायत का विरोध करते हुए कहा कि 2 सितंबर, 2005 को प्रतिवादी नंबर 3 ने दुर्व्यवहार किया, और प्रवर्तन कर्मचारियों के रिकॉर्ड छीन लिए। उस संबंध में, एफआईआर दर्ज करने के लिए एस.एच.ओ., पुलिस स्टेशन सेक्टर 34, चंडीगढ़ को एक पत्र लिखा गया था। आगे यह भी दावा किया गया कि प्रतिवादी नंबर 3, जो पंजाब राज्य बिजली बोर्ड का कर्मचारी है, एम एंड पी सब-डिवीजन, चंडीगढ़ में सहायक कार्यकारी अभियंता के रूप में प्रतिनियुक्ति पर काम कर रहा था। उन्हें सीलिंग प्लायर नंबर जी-यूटी-123 जारी किया गया था। प्रश्नगत परिसर में मीटर संख्या सीएचबी-13090, 4 जून 1989 को स्थापित किया गया था। जाँच के समय, सील पर "जी-यूटी-123' का निशान पाया गया। लोक अदालत के समक्ष इसका आग्रह किया गया था कि 1989 में मीटर की स्थापना के समय उक्त नंबर का उपयोग नहीं किया जा सकता था और वास्तव में प्रतिवादी नंबर 3 ने सील के साथ छेड़छाड़ करके अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया है। इसलिए, 13,046 रुपये की मांग की गई है। विवाद पर विस्तार से निर्णय करने और विभिन्न रिकॉर्ड, को तलब करने के बाद लोक अदलात ने 6 जुलाई, 2006 को एक आदेश पारित किया (पी -1), जिसमें प्रतिवादी नंबर 3 द्वारा दायर आवेदन को अनुमति दी गई, जो वर्तमान याचिका में चुनौती का विषय है।

(3) पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, हमारा मानना है कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं है। लोक अदालत ने याचिकाकर्ता के खिलाफ स्पष्ट निष्कर्ष देते हुए एक विस्तृत तर्कसंगत आदेश पारित किया है। विवादित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि किसी भी समय प्रश्न में मीटर धीमी गति से चलता नहीं पाया गया या सील के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई। याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 3 के दावे का खंडन करने में विफल रहा कि प्रवर्तन कर्मचारियों के एक जूनियर इंजीनियर की शरारत के कारण मीटर चलना बंद हो गया, जिसने लकड़ी के टुकड़े की मदद से मीटर को जोरदार झटका दिया। लोक अदालत ने

यह भी विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया कि दावेदार-प्रतिवादी नंबर 3 के संस्करण को बाद में विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने चेकिंग रिपोर्ट पर अपने हाथ से एक नोट जोड़ा है। संबंधित मीटर की जांच एम एंड टी लैब में भी की गई थी। लोक अदालत ने एम एंड टी लैब की रिपोर्ट मांगी लेकिन याचिकाकर्ता ने इसे उसके समक्ष कभी प्रस्तुत नहीं किया। लोक अदालत ने जांच से पहले की एक वर्ष की अवधि और उसके बाद की अवधि के लिए प्रतिवादी नंबर 3 का उपभोग डेटा भी मांगा। इसमें पाया गया है कि बिजली की खपत में सीमा के भीतर सामान्य भिन्नता है और चोरी के मामले को बरकरार रखने के लिए कोई तेज वृद्धि या गिरावट नहीं हुई है। यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में तथ्य के निष्कर्षों पर नहीं जा सकता है। हम सबूतों की दोबारा सराहना नहीं कर सकते हैं और स्थायी लोक अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष को दर्ज नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह पूरी तरह से अस्वीकार्य है।

(4) हमें अधिनियम की धारा 22सी(8) को रद्द करने और अधिकारातीत घोषित करने की दूसरी प्रार्थना में कोई बल नहीं मिला क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिट याचिका (सिविल) संख्या 543/2002 (एस.एन. पांडे बनाम भारत संघ और अन्य, अनुबंध आर-1) में पारित 28, अक्टूबर, 2002, तारीख के फैसले के तहत पहले ही संशोधन अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के पास केंद्रीय कानून के प्रावधान को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता यानी यू.टी. प्रशासन चंडीगढ़ को किसी भी तरह से संशोधन अधिनियम के आधार पर पीड़ित पक्ष के रूप में नहीं माना जा सकता है, जिसके द्वारा अन्य बातों के अलावा, अधिनियम की धारा 22 सी (8) जोड़ी गई थी ।

उपरोक्त प्रश्न राज्य बनाम केशव चंद्र नस्कर, (1) के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष आया। इसी तरह के विवाद से निपटते हुए, डिवीजन बेंच ने पैरा 13 और 14 में निम्नानुसार कहा है: —

> "(13) अगले उल्लंघन में यह तर्क नहीं दे सकता है कि वह अपने क़ानूनों के लिए संवैधानिक वैधता को अस्वीकार करता है अन्यथा इसे जारी रखने का कोई मतलब नहीं रह जाएगा वह धारणा। तीसरा, संविधान के अनुच्छेद 14 की भाषा इन शब्दों से शुरू होती है: "राज्य किसी भी व्यक्ति को इनकार नहीं करेगा, इसलिए, राज्य एक ही सांस में यह नहीं कह सकता है कि "मैंने एक क़ानून पारित किया है लेकिन मैं इसका पालन करने का प्रस्ताव नहीं रखता"। संविधान का अनुच्छेद 14 एक मौलिक अधिकार है और राज्य के विरुद्ध किसी व्यक्ति के पक्ष में सुरक्षा है। राज्य के लिए अपने स्वयं के अधिनियमों और क़ानूनों की निंदा करना और उन्हें अस्वीकार करना मौलिक अधिकार नहीं है, बल्कि उस व्यक्ति के लिए मौलिक अधिकार है जो राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों की असमानता या असमान संरक्षण से पीड़ित है। भारत में राज्यों को अदालतों में यह आग्रह करने का अधिकार देना एक बहुत ही खतरनाक कदम होगा कि उनके अपने कानून और अधिनियम असंवैधानिक और अमान्य हैं। ऐसा करना पिछले दरवाजे से राज्य को अधिनियमों और क़ानूनों को बनाने, निरस्त करने और संशोधित करने के संसद और राज्य विधानमंडल के प्राथमिक अधिकार को ख़त्म करने की अनुमति देना होगा। स्थिति दो अलग-अलग वर्गों के मामलों में उत्पन्न हो सकती है (1) जहां प्रश्न ऐसे मामले में उत्पन्न हुआ है जिस पर किसी उच्च न्यायालय या अन्य ने पहले ही विशेष क़ानून या उसके किसी खंड को असंवैधानिक करार दिया है या (2) यह किसी मामले में उत्पन्न हो सकता है जहां ऐसी कोई न्यायिक घोषणा नहीं की गई है. दूसरे मामले में यह वास्तव में अजीब होगा कि यदि राज्य अपने कानूनी सलाहकारों और विधायी मंत्रालयों और विभागों की सहायता से संसद और राज्य विधानमंडल में पूरी जांच और बहस के

---

(1) एआईआर 1962 कलकत्ता 338

बाद एक क़ानून पारित करता है, तो उसे अदालतों के समक्ष लड़ने की अनुमति दी जानी चाहिए। कानून है कि ऐसे क़ानून असंवैधानिक और उल्लंघनकारी हैं मौलिक अधिकारों का और इसलिए अदालतों द्वारा इसे प्रभावी नहीं बनाया जाना चाहिए। यदि ऐसा है और यदि राज्य का यही विचार है तो उन्हें या तो उस कानून को पारित नहीं करना चाहिए था या यदि उन्होंने इसे पारित भी किया था, तो उन्हें संविधान के अनुरूप होने के लिए इसे संशोधित, निरस्त या संशोधित करना चाहिए था। मामलों की पहली श्रेणी में जहां कुछ न्यायिक घोषणाएं होती हैं या इसके किसी भी खंड की निंदा होती है, तब भी यह राज्य पर है कि वह न्यायालय के उस फैसले का सम्मान करने के लिए कदम उठाए, जब तक कि निश्चित रूप से इसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्यथा चुनौती न दी जाए या परेशान न किया जाए। , और न्यायिक घोषणा को पूरा करने के लिए निरसन या संशोधन द्वारा इसकी विधियों को संशोधित करना। लेकिन राज्य के पास दोनों दुनियाओं में सर्वश्रेष्ठ नहीं हो सकता, एक तरफ मौलिक अधिकारों पर हमला करना और दूसरी तरफ अपने ही क़ानूनों को ख़राब घोषित करना। यह राज्य के लिए एक नए मौलिक अधिकार को मान्यता देगा, लेकिन मौलिक अधिकारों के भारतीय संविधान का भाग III मुख्य रूप से, पीड़ित व्यक्तियों और विषयों के अधिकारों का एक बिल है, और इसे एक सुविधाजनक मंच के रूप में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए जहां से राज्य कर सकता है। अपने स्वयं के क़ानूनों और अधिनियमों को लागू करने की अनुमति दी जाएगी।

(14) हालाँकि मुझे यह कहते हुए नहीं समझा जा सकता है कि भारत जैसे संविधान में भारतीय कानूनों और राज्य कानूनों के बीच टकराव पैदा नहीं हो सकता है। भारतीय न्यायालय में एक उपयुक्त मामले में किसी राज्य के लिए यह चुनौती देना काफी संभव, कानूनी और संवैधानिक रूप से स्वीकार्य है कि एक भारतीय (केंद्रीय) अधिनियम राज्य की विधायी शक्तियों पर हमला करता है और इसलिए,

राज्य यह तर्क दे सकता है कि भारतीय अधिनियम संविधान का उल्लंघन है। उदाहरण के लिए, यदि कोई भारतीय कानून भारतीय संसद द्वारा एक राज्य या दूसरे राज्य के खिलाफ भेदभाव करते हुए बनाया गया है, तो इससे प्रभावित राज्य उचित मामले में यह तर्क दे सकता है कि ऐसा कानून न तो कानून के समक्ष समानता देता है और न ही अपने क्षेत्र के भीतर कानूनों की समान सुरक्षा प्रदान करता है भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत । लेकिन वर्तमान संदर्भ संघीय और राज्य कानूनों के बीच ऐसा कोई प्रश्न या टकराव नहीं उठाता है। हालाँकि, इस मामले में ऐसा कोई सवाल नहीं उठता क्योंकि यह भारतीय शस्त्र अधिनियम और आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत मुकदमा है दोनों संसदीय (केंद्रीय भारतीय) अधिनियम हैं, यहां राज्य बनाम भारतीय केंद्रीय कानून के बीच टकराव का कोई सवाल ही नहीं उठता है।"

(5) निःसंदेह, भारत में राज्यों या केंद्रशासित प्रदेशों को अदालतों में यह आग्रह करने की अनुमति देना खतरनाक कदम होगा कि उनके अपने कानून और अधिनियम असंवैधानिक और अमान्य हैं। हम कलकत्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के तर्क को सम्मानपूर्वक अपनाते हैं और इसलिए, उठाए गए तर्क को खारिज करने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं है।

(6) उपरोक्त के मद्देनजर, तत्काल याचिका में कोई योग्यता नहीं है और तदनुसार इसे लागत सहित खारिज कर दिया जाता है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्यवन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

अर्शबीर कौर संधू
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
हरियाणा